International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 98-99
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 18-11-2014
Accepted: 23-12-2014

**डॉ. जया शर्मा**
संगीत विभाग, आर्यकन्या पी0 जी0 कॉलिज, हापुड, उत्तर प्रदेश, भारत

**Corresponding Author:**
**डॉ. जया शर्मा**
संगीत विभाग, आर्यकन्या पी0 जी0 कॉलिज, हापुड, उत्तर प्रदेश, भारत

# शास्त्रीय संगीत का आधार : लोक धुनें व लोकगीत

## डॉ. जया शर्मा

**प्रस्तावना**

संगीत या गाना बजाना मानव की नैसर्गिक क्रिया है। क्योंकि मनुष्य ईश्वर–प्रदत्त वाद्य या instrument 'कंठ' लेकर पैदा हुआ है। जिसकी 'गुनगुनाहट' उसकी पैदाइशी प्रकृति है। इसी उपकरण (कंठ) से सर्वप्रथम संगीत के सुर निकले। संगीत का शास्त्रीय कला के रूप में प्रतिष्ठापन तो बहुत बाद में अनन्त खोज और अनुसन्धान के पश्चात् हुआ। इस संदर्भ में स्व0 ठाकुर जयदेव सिंह जी का कथन है, "यद्यपि संगीत मानव के लिए नैसर्गिक है, तथापि आदि से ही संगीत का प्रादुर्भाव एक कला के रूप में नहीं हुआ, हमारे ऋषियों, आचार्यों, कलाकारों की सहस्त्र वर्षों की साधना, तपस्या के परिणाम स्वरूप संगीत एक उच्च कला की अवस्था को पहुँचा आज का शास्त्रीय संगीत शताब्दियों के प्रयास एवं प्रयोगों का परिणाम है।" केवल भारतीय संगीत ही नहीं अपितु विश्वभर का संगीत शास्त्रीयता या Classic स्तर पर बहुत बाद में पहुँचा। क्योंकि संसार भर के शास्त्रीय संगीत का आधार तत्कालीन धुन या ग्राम्य संगीत रहा है। डॉ. परांजपेजी लिखते हैं, "संगीत चाहे भारतीय हो, चाहे पाश्चात्य, अपने विकास के लिए साधन–सामग्र, जन–जीवन से जुटाता रहा है। संगीत उतना ही पुराना है, जितनी मानव–जाति अतएव लोकगीत की स्वर–लहरियाँ ही शास्त्रीय संगीत का मूलस्रोत है।

'लोक' शब्द हिन्दी के लोग या आम आदमियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जितने भी विषय, कलाएँ या परम्पराएं लोगों में प्रचलित है, उन सभी के लिए एक ही शब्द 'लोक' का प्रयोग किया जाता है। जैसा दिनेश चन्द्र गोस्वामी ने 1971 दिसंबर संगीत पत्रिका में उल्लेख किया है, "भारतीय परम्परा के अनुसार वैदिक से भिन्न शेष समस्त बातें लौकिक हैं किन्तु 'लोक' शब्द अंग्रेजी के फोक (folk) का पर्याय है। 'लोक' जनसाधारण लोगों से सम्बन्धित होने के कारण लोक है। अतएव लोगों के बीच जो भी धुनें या गीत गाए–बजाए जाते हैं वे सभी लोकगीत के अन्तर्गत आते हैं। लोक–गीत किसी के भी द्वारा बनाए गए हों इसकी सार्थकता सामूहिक रूप से गाने पर ही है। जैसा दिनेश जी ने लिखा है– "लोक संगीत में प्रचलित गीत अथवा लोगों द्वारा निर्मित गीत लोकगीत हैं। लोक–गीत का रचयिता व्यक्ति विशेष होते हुए भी वस्तुतः उसमें सम्पूर्ण लोग का व्यक्तित्व उजागर होता है और सामान्य जन से उसका तादात्म्य होकर शनैः शनैः परम्परा का अंग बन जाता है।" यही कारण है जब भाषा का उदय भी नहीं हुआ था मानव अपनी अपनी आदिम अवस्था में भी अपने भावों को किसी न किसी धुन में प्रकट करता रहा होगा, धीरे–धीरे यही गीत या धुन पारम्परिक ढंग से लोक गीत में परिवर्तित हो गए। आज भी आदिम जाति के लोक गीत, आम आदमी की समझ में भले ही न आए, किन्तु उनमें एक लयात्मकता होती है।

धीरे–धीरे इन्हीं प्रचलित ध्वनियों या धुनों का प्रयोग करते–करते उसने इन ध्वनियों का चलन सीखना शुरू कर दिया। क्योंकि ये धुनें उसे अच्छी लगने लगीं, इन्हें अपनी स्मरण शक्ति और बार–बार गाने पर, उन्हें जीवित रखा। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही ये धुनें परिष्कृत होकर 'शास्त्रीय संगीत' के रूप में सामने आईं। आज भी बहुत से ऐसे प्रादेशिक गीतों का प्रचलन है, जिनमें स्पष्ट शास्त्रीय संगीत के केवल, मल्हार, पहाड़ी, देश पीलू आदि रागों के स्वरों का आभास किया जा सकता है। हमारे देश में लोक गीतों या लोक–संगीत की समृद्ध परम्परा है, जो शास्त्रीय संगीत के नियमों–संयमों से स्वर्था अछूती और स्वच्छन्द है। बल्कि इसके अतिरिक्त संगीत की जितनी भी शैलियाँ आज प्रचलित हैं, उन सभी पर शास्त्रीय संगीत का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। तीन–चार स्वरों में तथा हल्की–फुल्की तालों में बंधे हुए ये गीत अपने आप में स्वतन्त्र विद्या है, जिसका उद्‌गम आदि काल से लेकर आजतक जन–रुचियों से हुआ है। कहा जा सकता है यह लोक–संगीत हमारे शास्त्रीय संगीत का आदिम स्वरूप है।

सुर–ताल के इस सामूहिक गीतों को ग्राम्य संगीत, लोक–संगीत आदि नाम दिया गया, जो सदा से ही प्रचलन में रहा। इसीलिए इस संगीत की स्वर–लहरियाँ से न केवल के शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ बल्कि प्राचीन वैदिक संगीत का उद्‌गम भी इन्हीं से हुआ जैसा परांजपेजी ने लिखा है,

"साम, धुन या 'स्वरावली' के लिए पर्यायवाची शब्द रहा है, यह तत्कालीन जन संगीत के अन्तर्गत गाई जाने वाली धुनें थीं। इन्हीं की तर्ज पर वेदिक मंत्र गाए जाते थे। संगीत लोक–रंजन और ईश्वर रंजन दोनों के लिए उपर्युक्त है। ऐसी वैदिक आर्यों की धारणा थी। यज्ञ–याग के अवसर पर मंत्रों का साधारण पाठ या पठन की अपेक्षा मंत्रों का गायन अधिक प्रभावशाली माना जाता था। इस गायन के लिए तत्कालीन धुनें उपयुक्त मानी गईं। और इन्हीं के आधार पर वैदिक ऋचाएँ गाई जाने लगीं।" आज भी अनेक भजन मंडलियों में लोकप्रिय फिल्मी गीतों की धुनों पर भजन गाए–बजाए जाते हैं। ठीक इसी प्रकार तत्कालीन धुनों के आधार पर वैदिक गान होता रहा। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित जैसे वैदिक सुरों की कल्पना तो बाद में की गई। अतएव चाहे प्राचीन वैदिक संगीह हो, चाहे आज का शास्त्रीय संगीत या पाश्चात्य म्युजिक हो सभी का मूलस्रोत प्रचलित धुनें रही हैं। इन्हीं धुनों के साथ कुछ नये–नये उपकरण रहे, जिनकी लय और ताल के साथ धुनें और भी आकर्षक लगने लगीं। इस प्रकार विभिन्न वाद्यों के संयोग से संगीत का स्वरूप खड़ा होने लगा, जिसने बाद में शास्त्र का स्वरूप धारण किया। जैसा प्रो0 ललित किशार जी ने लिखा है, "उस समय वाद्य–यन्त्र भी एक नया साधन प्राप्त हुआ, जिसने मस्तिष्क के सामने संगीत का पूर्ण रूप खड़ा कर दिया। इसके बाद ही व्याकरण की तरह संगीत–शास्त्र का निर्माण हुआ, इसी ने ग्राम्य संगीत को शास्त्रीय संगीत में बदल डाला।"

प्रचलित धुनें ही शास्त्रीय संगीत के थाट–राग के नियमों में बाँधी गईं। यद्यपि शास्त्रीय सगीत राग पर आधारित होता है लेकिन राग के सुर और लय भी कलाकारों की कल्पनाओं को प्रकट करते हैं और राग का भी मूल उद्देश्य भी रसात्मकता होता है – रंजको जनचित्तानाम् सराग कथितो बुधैः, लेकिन नियमानुसार राग के स्वर विस्तार या आलाप भावों की अभिव्यक्ति करता है। शास्त्रीय संगीत के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति करने का अभिप्राय, रागों के शास्त्रोक्त स्वरूप को पूरी तौर पर आत्मसात करना, उसके पश्चात् ही शास्त्रीय संगीत में रजंकता पैदा हो सकती है। जिसके लिए किसी अच्छे संगीत गुरु की तालीम की आवश्यकता रहती है। जबकि लोक–संगीत, सुर और लय का स्वच्छन्द प्रवाह है, जिसमें आम आदमी सुर में सुर मिलाने की क्षमता रखता है। इसीलिए लोक गीत के सामने शास्त्रीय संगीत उतना लोक प्रिय नहीं हो पाता। यही कारण है कि किसी संगीत–समारोह में शास्त्रीय गायन के पश्चात् ठुमरी या भजन अवश्य गाया जाता है। जो इस तथ्य का प्रतीक है कि अधिकांशतः लोगों की रुचि सहज और सरल गायन की ओर रहती है।

शास्त्रीय संगीत थाट और राग की परिधि में होने के कारण उसका विस्तार स्वरों के रूप में अनन्त है। लेकिन थाट और राग की विशेषताओं के साथ उसका स्वरूप आरोह–अवरोह जैसे शास्त्रीय नियमों से बनता है एक ही थाट से अनेक स्वरों के राग, वादी–सम्वादी, मींड़, कण एवं स्वरों के वक्रत्व पर राग रूप आधारित होता है तद्वत उसकी शास्त्रीय तालें भी रहती हैं। अतः शास्त्रीय रागों एवं तालों के ज्ञान के लिए अच्छे प्रशिक्षण की आवश्यकता है। जबकि 3 या 4 स्वरों में गाए जाने वाले लोक–गीतों के स्वरों में भी विभिन्न रागों की स्वरावलियों का आभास रहता है किन्तु अधिकतर लोक गीतों में शुद्ध स्वरों का अधिक प्रयोग किया जाता है। गन्धार और निषाद कोमल तीव्र मध्यम के प्रयोग कम मिलते हैं। बल्कि इन स्वरों के प्रयोग वाले लोक–गीत बाद की रचनाएँ हैं। लोक गीत का स्वरूप तो मधुरतम स्वर–समूहों के प्रयोग से बनता है। अतः सहज और स्वाभाविक होने के कारण लोक गीतों में बन्धन की अपेक्षा नहीं रहती। इसी कारण लोक गीतों को सभी लोग समवेत स्वरों में गा लेता है। समूह में गाना लोक गीत की विशेषता है। इसीलिए ये गीत लोक यानी लोगों द्वारा गाए जाने वाले गीत हैं।

प्रचलित लोकगीतों का स्वरूप व चलन को देखते हुए सिद्ध होता है कि लोक धुनें ही भारतीय संगीत के रागों की पृष्ठभूमि हैं। मार्च 1972, संगीत पत्रिका में उल्लेख किया गया, "लोक धुनें ही भारतीय संगीत का आधार स्वरूप है। सर्वप्रथम जनसमूह ने गीतों की धुनें सामूहिक रूप से रचीं। धुनें मानवीय हृदय के उद्गार थे। धुनें बनाने के उपरान्त उनमें से रागों को खोजा गया। अतः ऐसा माना जाता है कि लोक–धुनों से ही शास्त्रीय रागों का विकास हुआ।" जिस प्रकार व्यक्ति समाज की महत्वपूर्ण इकाई है और समाज के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है ठीक उसी प्रकार लोक गीतों या धुनों का सम्बन्ध समाज से है विभिन्न प्रांतों की भाषा, रहन–सहन, रीति–रिवाजों और तीज त्यौहारों के अनुरूप लोकगीत भी बनाए जाते हैं। कहा जाता है भारतीय संस्कृति का स्वरूप पारम्परिक लोकगीतों में दिखाई देता है। इसीलिए हमारे देश में लोक–गीतों की समृद्ध परम्परा रही है। प्रत्येक प्रान्त की बोली और सुर–लगाव पर लोक गीत बनाए गए। जैसे ब्रज के रसिया, होली, राजस्थान के गणगोर, सावण–सुहावणा, मिर्जापुर की कजरियाँ हरियाणा, पहाड़ी अंचली के गीत। इन्हीं गीतों की धुनों पर बाद में रागों का ढाँचा तैयार किया गया होगा। यही कारण है शास्त्रीय राग–रागनियों के जो नियम हैं, वे ही नियम किसी न किसी रूप में परम्परागत धुनों में भी दिखाई देते हैं। खोजने पर प्रतीत होता है, कि इन धुनों में भी रागों के स्वरों की छाया है। बस ये धुनें स्वच्छन्द, स्वाभाविक और रसानुकूल होती है। इसीलिए ये धुनें परम्परा से प्रसिद्ध हैं। लेकिन जिन लोकगीतों में शास्त्रीय पक्ष अधिक रहता है वे लोकगीतों की श्रेणी में नहीं आ सकतीं, बल्कि वे किसी संगीतकार की रचनाएँ होती हैं। लोकगीतों का स्वभाव ही सहजता, मधुरता और सुन्दर स्वरावलियाँ हैं। ये गीत बनाए नहीं जाते बल्कि बन जाते हैं। जब इन्हें शास्त्रीय नियमों द्वारा परिष्कृत कर लिया जाता है तब हम उन्हें राग और रागिनियाँ कहते हैं। अतः लोकगीत या धुनें बीज हैं, जिस पर रागरूप वृक्ष उगाए गए हैं।

## सन्दर्भ


1. लोकसंगीत अंक, संगीत पत्रिका, हाथरस
2. संगीत–मणि – डॉ. महारानी शर्मा
3. संगीतायन – डॉ. सीमा चौधरी